पञ्चास्तिकाय समयसार

जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी (म. प्र.)

इस पंचम कालमें श्री. कुन्द कुन्द आचार्य का नाम सभी दिगम्बर जैनाचार्यों ने बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। इन्हें भगवान् कुन्द कुन्द ऐसा आदर वाचक शब्द लगाकर अपनी आन्तरिक प्रगाढ़ श्रद्धा ग्रंथकारों ने प्रकट की है।

यह विदित वृत्त है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य विदेह क्षेत्र स्थित श्री १००८ भगवान् सीमंधर प्रथम तीर्थंकर के समवशरण में गये थे और उनका प्रत्यक्ष उपदेश श्रवण किया था। इस वृत्त के आधार पर भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य की प्रामाणिकता में अभिवृद्धि ही होती है।

भगवान् महावीर के मुक्तिगमन के पश्चात् गौतमगधर और गौतम की मुक्तिके बाद सुधर्माचार्य तथा तदनंतर श्री जबूस्वामी संघके अधिनायक हुए। ये तीनों केवली हुए, इनके पश्चात् जो श्रुत के पारगामी संघ की परंपरा में अधिनायक हुए उनमें केवली न होकर श्रुत केवली हुए वे श्रुत केवलीयों के बाद जो संघ भारके धारक हुये वे कतिचित अंगके धारक हुए।

इस परम्परासे प्रथम श्रुतस्कंध की उत्पत्ति श्रीधरसेनाचार्य से जो षट्खण्डागम रूपमें (श्री आचार्य भूतबली पुष्पदंतद्वारा रचित) सामने आई।

द्वितीय श्रुतस्कंध की उत्पत्ति श्री गुणधर आचार्य से है। इन्हें पंचम पूर्व ज्ञानप्रवाद के दशमवस्तु के तृतीय प्राभृतकी साथ थी। उस विषय का ज्ञान श्रुत परम्परासे श्री कुन्दकुन्द देवको प्राप्त हुआ।

आचार्य श्री कुन्दकुन्दने समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय आदि ग्रंथ रचे जिनमें यह पञ्चास्तिकाय है।

इस ग्रंथमें शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा वस्तुस्वरूप कथन की मुख्यता है। सारांश यह कि ग्रंथमें जो जिन द्रव्योंका वर्णन है वह शुद्ध–द्रव्यार्थिक–नयसे है। पर्याय की विद्यमानता होते हुए दृष्टि में और कथन में वह गौण है।

यह विश्व अनाद्यनन्त है। इसकी मूलभूत वस्तु न उत्पन्न है और न उसका कभी विनाश होता है। उसे ही द्रव्य कहते हैं। ऐसा होनेपर भी प्रत्येक द्रव्य (मूलभूत वस्तु) सदा रहते हुए भी सदा एक अवस्था में नहीं रहती। उसकी अवस्था सदा बदलती रहती है। अवस्थाओं को देखें, मूलभूत वस्तु को न देखें यदि हम अपने ज्ञानोपयोग की यह अवस्था कुछ समय को बनालें, तो उस समय हमारी दृष्टि 'पर्याय–दृष्टि' कहलायेगी, प्रकारान्तर से उसे 'पर्यायार्थिक नय' की दृष्टि कहा जायगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ में मूलभूत पदार्थ पर दृष्टि (उपयोग) हो और उस परिवर्तन शील अवस्था ओंको उस समय स्वीकार करते हुए भी दृष्टि में गौण कर दे तो वह 'द्रव्य दृष्टि' या 'द्रव्यार्थिक नय' की दृष्टि कहलायेगी।

इसी प्रकार जब हम अपने उपयोगमें द्रव्य और पर्याय दोनों से समग्र पूर्ण वस्तुको लें तो वह 'प्रमाणदृष्टि' कहलायेगी। प्रमाणदृष्टि (एकाग्र दृष्टि) से पदार्थ नित्यानित्य है।

पदार्थ में अवस्था भेद स्वयं स्वभाव से होता है तथा परिवर्तन में बाह्य पदार्थ की निमित्तता भी पाई जाति है।

कर्तावादी सम्प्रदाय पदार्थ का तथा उसके परिणमन का कर्ता धर्ता तथा विनाशक ईश्वरको मानते है पर जैन तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि का यह संदेश है कि ईश्वर किसी वस्तु का कर्ता हर्ता नहीं है। वह शुद्ध निरंजन निर्विकार मात्र ज्ञातादृष्टा है। पदार्थ परिणमन स्वयं करते हैं और ऐसा उनका स्वभाव है जो अनाद्यनन्त है।

यदि पदार्थ व्यवस्था अनाद्यनन्त नहीं मानी जाय उसका कर्त्ता हर्त्ता ईश्वर को माना जाय तो ईश्वर को भी अनाद्यनन्त न माना जाकर उसका कर्त्ता धर्त्ता किसी अन्य को माना जाएगा। और उसका भी अन्य को इस प्रकार अनवस्था दोष होगा। ईश्वर को अनाद्यनन्त मानें तो पदार्थ को ही अनाद्यनन्त क्यों न माना जाय यह तर्क सुसंगत है।

लोक स्वरूप

यह दिखाई देनेवाला लोक छः द्रव्यके समुदाय स्वरूप है। उन द्रव्यों के नाम हैं—

(१) जीवद्रव्य (२) पुद्गल द्रव्य (३) धर्म द्रव्य (४) अधर्म द्रव्य (५) काल द्रव्य (६) आकाशद्रव्य।

(१) जीवद्रव्य

जीव द्रव्य अमूर्त (इन्द्रियगोचर) द्रव्य है वह चैतन्यवान है, जानना देखना उसका स्वभाव है। राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि उसके विकारभाव हैं। जो कर्म संयोगी दशा में कर्म के निमित्त को पाकर जीवमें पाए जाते हैं पर वे जीवमें स्वभाव भाव नहीं है।

"**गुणपर्ययवद्द्रव्यम्**" द्रव्यके इस लक्षण के अनुसार जीवद्रव्य अनन्तगुणोंकी स्थिति है, तथा पर्याय परिवर्तन (अवस्थाओंका बदलना) अन्य द्रव्यों की तरह जीवद्रव्यमें भी होता है।

कर्मसंयुक्त दशा में वे गुण दोष या विकार रूपमें पाए जाते हैं; और असंयोगी दशा (सिद्धावस्था), में गुण गुणरूप में या स्वभावपर्यायरूप में पाए जाते हैं।

इस जीवके साथ पौद्गलिक कर्मों का सम्बन्ध अनादि से है। इसलिए उसकी संसारी दशा, विकारी दशा या दुःखमय दशा चली आरही है। इस अवस्था में सामान्यतया एकपना होनेपर भी अनेक भेद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नर–नारकादि पर्यायें प्रसिद्ध ही है। जीवद्रव्य में कर्म के उदय आदि की अपेक्षाबिना लिए सहज ही चैतन्यानुविधायी परिणाम पाया जाता है जिसे पारणामिक भाव कहते हैं। यह चैतन्य शक्ति जीवमें अनादि निधन है। इसके विशेष परिणमन कर्म के उदयादि की अपेक्षा होते हैं अतः उन्हें औदयिक भाव कहते हैं, उपशम दशामें औपशमिक, तथा क्षयोपशम दशामें क्षायोपशमिक भाव, तथा कर्मक्षय होनेपर प्रकट होने-वाले चैतन्य की केवलज्ञानादि रूप पर्याय को क्षायिक पर्याय कहते हैं। गाथा ५६–५७ में इसका स्पष्ट विवेचन ग्रन्थकार ने स्वयं किया है।

सारांश यह है कि, जीवद्रव्य अनादि से कर्म संयुक्त अवस्था के कारण संसारी है और कर्मसंयोग को दूर करने पर वही मुक्त या परमात्मा बन जाता है।

जो संसारी प्राणी अपनी मुक्त (स्वतन्त्र–निर्बंध) दशा को प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें सर्वप्रथम जिनेन्द्र की देशना के अनुसार आत्मा का असंयोगी रूप स्वभाव क्या है उसे विचार कर उसकी श्रद्धा करनी आवश्यक है। जो अपने सहज स्वभावको पहिचानकर–जानकर उसके अनुकूल आचरण करेगा वह अवश्य असंयोगी दशा (मुक्त दशा) को प्राप्त करेगा।

जीवके प्रदेशभेद है और वे असंख्यात है। अतः जीवको '**जीवास्तिकाय**' के नामसे ग्रन्थ में लिखा गया है। जबतक संसारी जीव निगोदावस्था, या एकेन्द्रियावस्था में रहता है तब तक अव्यक्त रूप में कर्मोदय के कारण सुखदुःखरूप को भोगता रहता है। इसे ग्रन्थकारने '**कर्मचेतना**' कहा है किन्तु त्रसराशिस्थित जीवों के कर्म चेतना के साथ साथ '**कर्म चेतना**' भी होती है। ये कर्म के फल-स्वरूप रागादि रूप परिणाम के आधारपर कर्म के कार्य का संचेतन करते हुए फल भोगते है अतः इनके '**कर्म फल**' चेतना कही गई।

ज्ञान संचेतना सम्यग्दृष्टि जीवों के होती है ऐसा ग्रन्थान्तरोंमें विवेचन है तथापि सम्पूर्ण **ज्ञानचेतना** भनवान् सिद्धपरमेष्टी के है ऐसा पंचास्तिकाय गाथा ३९ में निरूपण किया।

ज्ञानचेतना का अर्थ वहाँ किया गया है जो मात्र ज्ञान का संचेतन करते है। ग्रन्थकारके शब्द है—

पाणित्तमदिक्कंता, णाणं विदन्तिते जीवा।

अर्थात् प्राणिप ने याने दश प्राणों को जो अतिक्रान्त कर हुए है अर्थात् पाँच इन्द्रिय, मन–वचन–काय–आयु–श्वासोच्छ्वास को जो पार कर चुके है ऐसे सिद्ध प्रमात्मा ही ज्ञानचेतनावाले हैं।

जहाँ यह विवेचन है कि सम्यग्दृष्टि मात्र के ज्ञानचेतना होती है वहाँ यह भी स्पष्ट किया है कि सम्यग्दृष्टि स्वसंवेदन द्वारा आत्मा का बोध करता है।

पुद्गलिस्तिकाय

दूसरा द्रव्य—पुद्गल द्रव्य है। यह मूर्तिक द्रव्य है, इन्द्रियगोचर है। यद्यपि सूक्ष्म पुद्गल इन्द्रिय गोचर नहीं होते तथापि वे परिणमन द्वारा जब स्थूलता प्राप्त करते हैं तब इन्द्रियों के विषयभूत हो जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु—स्कंध के भेदसे इसके २ भेद है। यद्यपि अणु एक प्रदेश मात्र है तथापि शक्त्यपेक्षया बहु प्रदेशी है। स्कंध बहुप्रदेशी है। जो दो से अनन्त प्रदेश तक के पाए जाते हैं। पुद्गल भी अनेक-प्रदेशित्व के कारण '**अस्तिकाय**' संज्ञा को प्राप्त है।

इन्द्रियगोचरता के कारण रूप-रस-गन्ध-स्पर्श गुण पुद्गल में प्रसिद्ध है। उक्त प्रसिद्ध २ भेदों के सिवाय पंचास्तिकाय कर्ताने इसके ४ भेद किए है—

१ स्कंध, २ स्कंधदेश, ३ स्कंधप्रदेश, ४ परमाणु।

इन भेदों में ३ भेद तो स्कंधसे ही सम्बन्धित है चौथा भेद परमाणु है।

अनंतानंत परमाणुओं की एक **स्कंध** पर्याय है। उसके आधेको **देश**, आधेसे आधेको **प्रदेश**, कहते है किन्तु मात्र एक प्रदेशी अविभागी पुद्गल द्रव्य **परमाणु** शब्द से व्यवहृत है। परमाणु और स्कंध प्रदेश से बीचके समस्त भेद स्कंध प्रदेश में ही गिने जाते हैं।

तीसरे प्रकारसे पुद्गलके ६ प्रकार बतलाए गए है—

१ बादर बादर, २ बादर, ३ बादर सूक्ष्म, ४ सूक्ष्म बादर, ५ सूक्ष्म, ६ सूक्ष्म-सूक्ष्म। इनकी व्याख्या इस प्रकार है।

१ **बादर बादर**—पुद्गल के वे स्कंध जो टूटने पर स्वयं जुड़ने में असमर्थ है वे बादर बादर है, जैसे काष्ट-पत्थर-या इसी प्रकार के कठीन पदार्थ।

२ **बादर**—वे पदार्थ है जो अलग २ करने के बाद स्वयं मिलकर एक बन सकते है जैसे दूध-तेल-घी आदि।

३ **बादर सूक्ष्म**—वे पदार्थ है जो उपलब्ध करने में स्थूल दिखाई देते है पर जिनका छेदन भेदन करना शक्य नहीं है जैसे छाया, धूप, चांदनी, अंधेरा आदि।

४ **सूक्ष्म बादर**—वे है जो देखने में सूक्ष्म होनेपर भी जिनकी स्पष्ट उपलब्धि की जा सकती है जैसे मिश्री आदिके रस, पुष्पों की गन्ध आदि। वायु, शब्द आदि भी सूक्ष्म बादर है।

५ **सूक्ष्म**—वे पुद्गल है जो सूक्ष्म भी है, और इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है जैसे कर्म परमाणु।

६ **सूक्ष्म सूक्ष्म**—कर्म परमाणु से भी सूक्ष्म स्कन्ध जो दो चार आदि परमाणुओं से बने है ऐसे स्कन्ध सूक्ष्म सूक्ष्म कहलाते है। द्वि अणुक स्कन्ध भेद से नीचे एकप्रदेशी की परमाणु संज्ञा है एकप्रदेशी होनेपर भी परमाणु में रूप, रस, गन्ध-वर्णादि पाए जाते है। वे रूप-रस-गन्ध स्पर्श गुण है। इन गुणों की अनेकता पाए जानेपर भी परमाणु में प्रदेशभेद नहीं है।

जैसे जैनेतर दर्शन गन्ध-रस-रूप-स्पर्श आदि गुणों के धारण करने वाले 'धातु-चतुष्क' मानते हैं वैसी मान्यता जैनाचार्योंकी नहीं है। उनकी जुदी जुदी सत्ता नहीं है वे सब एकसत्तात्मक है। जो गन्ध है। याने गन्ध का प्रदेश है वही रूपका है अन्य नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण क्रमशः स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु चार इन्द्रियों के विषयभूत चार गुण है जो पुद्गल द्रव्य के है। कर्णेन्द्रियका विषय शब्द है। शब्द गुण नहीं है किन्तु पुद्गल द्रव्य की स्वयं एक पर्याय है। जैनेतर दर्शनों में किन्ही २ ने उसे आकाश द्रव्य का गुण माना है परन्तु वह मान्यता आज विज्ञान द्वारा गलत प्रसिद्ध हुई है।

शब्द का आघात होता है। वह आघात सहता है, भेजा जाता है, पकड़ा जाता है अतः गुण न होकर वह स्वयं पुद्गल द्रव्य की एक अवस्था विशेष है।

गॅस–अंधःकार–प्रकाश–ज्योति–चांदनी–धूप ये सब पुद्गल द्रव्य के ही नाना रूप है। इन सब में अपने २ स्वतंत्र स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण गुण है तथा अन्य अनेक गुण है।

शुद्ध पुद्गल 'परमाणु रूप' है। स्कन्ध पर्याय पुद्गल की अशुद्ध पर्याय है। शुद्ध परमाणु स्कन्ध बनने की दुकाई है बिना दुकाई के जैसे संख्या नहीं बन सकती इसी प्रकार बिना परमाणु को स्वीकार किए सारे दृश्यमान जगत् का अभाव होने का प्रसंग आएगा। परमाणु के अनेक उपयोग है। जिससे उसकी सत्ता सूक्ष्म होनेपर भी उससे स्वीकार करना अनिवार्य है।

(१) परमाणु स्कंधोत्पत्ति का हेतु है। स्कंध के भेद का अंतिमरूप है।

(२) परमाणु द्वारा अवगाहित आकाश प्रदेश 'प्रदेश' का मापदण्ड है जिससे जीवादि छहो द्रव्यों के प्रदेशों का परिमाण जाना जाता है।

(३) एक परमाणु आकाश के एक प्रदेश पर स्थित हो और मंद गति से आकाश के द्वितीय प्रदेश पर जाय तो वह 'समय' का मापदण्ड बन जाता है।

(४) एक प्रदेश रूप परमाणु में स्पर्शादि गुण के जघन्य भाव आदि का भी अवबोध किया जाता है अतः वह भाव संख्याका भी बोधक है।

फलतः सर्व द्रव्य–सर्व क्षेत्र–सर्व काल और सर्व भावों के अंशों का मापक होने से परमाणु अपनी उत्कृष्ट उपयोगिता को सिद्ध करता है।

परमाणु में वर्ण रसादि गुण क्रमशः परिणमन रूप होते रहते है जिससे परमाणु एक प्रदेशी होकर के भी गुण पर्याय सहित होने से द्रव्य संज्ञा को प्राप्त है।

पुद्गल द्रव्य ही इन्द्रियों द्वारा उपभोग योग्य होता है अतः प्रायः उनके माध्यम से ही जीव के रागादि विकार-परिणाम होते हैं। इस पुद्गल की अवस्था विशेष रूप कार्माण वर्गणाएं ही जीव के साथ संबंध को प्राप्त होती हैं और जीव का विकार रूप परिणमन होता है वही जीव का संसार है। और उससे वियुक्त होने पर जीव का स्वभावरूप परिणमन ही मोक्ष है। अनेक प्रदेशात्मक होने से स्कंध तथा स्कंधरूप परिणमन की योग्यता से परमाणु भी अस्तिकाय संज्ञा को प्राप्त है। इस तरह पुद्गलास्तिकाय का विवेचन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य

ये दोनों द्रव्य वर्णरहित होने से दिखाई नहीं देते, रस रहित होने से रसना इन्द्रिय भी नहीं जाने सकते, गंध और स्पर्श रहित होने से नासिका और स्पर्शन इन इन्द्रियों द्वारा भी इनका बोध नहीं हो सकता, पुद्गल की द्रव्यात्मक पर्याय न होने से ये कर्णेन्द्रिय के भी विषय नहीं हैं। इस प्रकार हमारे ज्ञान के लिए साधनभूत पांचों इन्द्रियों इसे जानने में समर्थ नहीं हैं।

बहुत से लोग उन वस्तुओं के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते जो उनके ऐन्द्रिय ज्ञान में नहीं आते। पर ऐसी मान्यता गलत है जो हमारे ज्ञान में न आने पर अन्य किसी के ज्ञान में आवे वह भी मान्य करना अनिवार्य हो जाता है।

ये दोनों द्रव्य समस्त लोकाकाश में भरे हैं। ये संख्यायें १–१ है : प्रदेशों की संख्या इन की असंख्य है आकार लोकाकाश के बराबर है। समस्त जीव पुद्गल इनके अन्तर्गत है। इनसे बाहिर कोई जीव पुद्गल नहीं है। इसका कारण है कि ये लोक व्याप्ति द्रव्य है। यद्यपि इनमें भी द्रव्य का 'गुणपर्यय-वद्द्रव्यम्' यह लक्षण है अतः अनन्तानन्त अगुरुलघु गुणों की हानि वृद्धिरूप पर्याय परिणमन अन्य द्रव्यों की तरह इन दोनों में भी पाया जाता है तथापि इनका दृष्टि में आनेवाला कार्य निम्न प्रकार है।

जीव पुद्गल क्रियावान् द्रव्य है। ये क्रिया (देश से देशान्तरगमन) करते हैं इस गमन क्रिया का माध्यम मछली के गमन में जल की तरह धर्मद्रव्य है।

तथा गमन करके पुनः रुकने की क्रिया का माध्यम अधर्म द्रव्य है। इस तरह इन दोनों द्रव्यों की उपयोगिता चलने और रुकने में सहायता देना है।

यहां सहायता का अर्थ प्रेरणा नहीं है। किन्तु ये दोनों उदासीन कारण हैं। चलना और रुकना पदार्थ अपनी योग्यता पर स्वतंत्रता से करते हैं, परन्तु उनकी उक्त क्रियाएं इन द्रव्यों की माध्यम बनाए बिना नहीं होती। जैसे वृद्ध पुरुषों को लकडी चलाती नहीं है पर उसके बिना वह चल नहीं पाता। लाठी का अवलंब करके भी चलना उसे स्वयं पडता है जो उसकी योग्यता पर निर्भर है।

धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य के इतने ही कार्य देखने में आते है ऐसी बात नहीं है किन्तु समस्त पुद्गल द्रव्योंके विविध आकार तथा जीवके संस्थान बनने में धर्म अधर्म द्रव्य की उपयोगिता देखी जाती है। यदि आप किसी बिन्दु (०) से आगे बढेंगे तो धर्म द्रव्य की सहायतासे और वह बिन्दु बनानेवाली कलम की क्रिया जो धर्म द्रव्य के आधार पर होगी रेखा बन जायगी।

इस क्रिया में आप प्रारंभ में बिन्दु और अंत में बिन्दु मध्य में रेखा देखते है। प्रथम बिन्दु से कलम ने क्रिया की और रेखा बनना प्रारंभ हुआ और अधर्म द्रव्य को अवलंबन लेकर कलम में रुकने की क्रिया की कि वहाँ २ बिन्दुपर रेखा रुक गई। इस तरह धर्म द्रव्य के आधार पर कलम की गति और अधर्म द्रव्य के आधार पर उस गतिका रुकना हुआ फलतः आद्यन्तवान रेखा बन गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह रेखा आगे त्रिकोण चतुष्कोण आदि विविध आकार रूप रेखाओं के माध्यम से बन जा सकती है। फलतः सभी आकारों का माध्यम गतिस्थिति है और गतिस्थिति का माध्यम धर्म और अधर्म द्रव्य है।

निष्कर्ष यह सामने आगया कि किसी प्रकार का आकार कृत्रिम हो, या अकृत्रिम हो। पुद्गल परमाणुओं स्कन्धों, या आत्मप्रदेशों से क्रिया रूप होने तथा यथा स्थान क्रिया रुकने रूप परिणमनसे बनते है अतः सिद्ध है कि संसारके समस्त प्रकार के आकार प्रकार या नर–नारकादि पर्याय रूप जीव प्रदेशों का परिणमन बिना धर्म अधर्म द्रव्य के नहीं बना।

जिनका इतना विशाल कार्य जगत के सामने हो और कोई अज्ञानी इसके बाद भी उन द्रव्यों की सत्ता को न माने तो यह उसका अज्ञान भाव ही कहा जायगा।

लोक अलोक का विनाश सिद्ध जीवों की लोकाग्र में स्थिति इन द्रव्यों के आधार पर है। ये दोनों द्रव्य स्वयं क्रियावान् नहीं है फिर भी गमन करने व रुकने में इनकी सहायता है। फलतः ये उदासीन कारण है।

आकाश द्रव्य

यद्यपि यह भी रूप–रस–गन्ध–स्पर्श रहित है, अमूर्त है, एक है पर अनन्त प्रदेशी द्रव्य है। यह भी अनंतानंत अगुरुलघु गुणों की हानि–वृद्धि से परिणमनशील द्रव्य है।

समस्त द्रव्यों का अवगाहन इसी द्रव्य में है जहाँतक जितने आकाश में जीवादि पाँच द्रव्य पाए जाते हैं वह लोकाकाश और जहाँ मात्र आकाश है वह अलोकाकाश कहलाता है।

ये पाँच द्रव्य अपना जैसे अस्तित्व रखते है उसी प्रकार ये बहु प्रदेशी है इसीलिए उन्हें '**अस्तिकाय**' शब्द द्वारा बोधित करते हैं। जहाँ अस्ति शब्द अस्तित्व का बोधक है वहाँ सभी शब्द काय (शरीर) की तरह 'बहु–प्रदेशित्व' का प्ररूपक है।

जीव द्रव्य एक चेतन द्रव्य है। शेष चार अचेतन हैं। पुद्गल द्रव्य मात्र मूर्तिक है शेष चार अमूर्तिक हैं। पुद्गल रूपी है। जीव अरूपी भी है अपने स्वभाव से पर सकर्म दशा में कथंचित् रूपी भी कहा जाता है।

काल द्रव्य

इन पांच अस्तिकायों के सिवा एक काल द्रव्य है। यह भी अमूर्तिक, अरूपी, अचेतन है तथापि यह एक प्रदेशी द्रव्य है। ऐसे एक एक प्रदेश में स्थित कालाणू लोकाकाशप्रदेश प्रमाण असंख्य है। कालद्रव्योंका परिणमनमे सभी द्रव्यों के परिणमन में व्यवहार निमित्त है। प्रत्येक पदार्थ का परिणमन चाहे गत्यागत्यात्मक हो या अन्य प्रकार हो समय की सहायता के बिना हो नहीं सकता यही काल द्रव्य के अस्तित्व का प्रमाण है। कालद्रव्य अस्तित्व रूप होकर भी काय रूप (बहु प्रदेशी) नहीं है किंतु एक प्रदेशी असंख्य द्रव्य है इसीसे इसकी गणना अस्तिकाय में नहीं की गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह षड् द्रव्य और पंचास्तिकाय की प्ररूपणा भगवान् कुन्दकुन्द ने पंचास्तिकाय में की है। उद्देश यह है की संसार की यथार्थ स्थिति को समझ कर सचेतन जीव द्रव्य इनसे राग द्वेष छोड़कर निज-स्वरूप की मर्यादा में रहे तो संसार के समस्त दुःखों से छुट सकता है।

इसे दुःखसे छुड़ाने और राग द्वेषसे छुड़ाने को आचार्य ने जीव और पुद्गल से–परसार निमित्तसे उत्पन्न अवस्था विशेष से सप्ततत्व या नव पदार्थोंका रूप वर्णन किया है, इन सप्त तत्वों व नव–पदार्थों की स्वीकारता या श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है। इनके ज्ञानको सम्यग्ज्ञान तथा आत्म रमण को चारित्र कहा है।

और यही सम्यग्दर्शन सात चारित्र मोक्ष के मार्ग के है अर्थात संसार के समस्त दुःखों से छुटने के उपाय है।

ग्रंथकार ने उक्त उद्देश को सामने रखकर ही समस्त ग्रंथ १७२ गाथाओं में रचा है। जो तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए तथा मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org